REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 12 | ISSUE - 1 | OCTOBER - 2022

नासिरा शर्मा के उपन्यासों का अध्ययन

सरिता
शोध छात्रा, पीएच.डी. (हिन्दी)
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर (रोहतक), हरियाणा.

प्रेमचंदयुगीन उपन्यासों में महिला लेखिकाओं का अभाव रहा है। प्रेमचंदोत्तर युग में उपन्यास क्षेत्र में महिला लेखिकाएँ अपनी पृथक पहचान बनाती हैं। समकालीन महिला उपन्यासकारों ने अनेक अछूते संदर्भों को उजागर किया है। इनमें नासिरा शर्मा के उपन्यास भी अपनी पहचान बनाते हैं। इनके अब तक लगभग 10 उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। मानवमात्र की समस्याओं, विडम्बनाओं, भावनाओं एवं संवेदनाओं को अपने उपन्यासों में अभिव्यंजित किया है, जिसमें कभी वे अन्य महिला लेखकाओं की भाँति एक सामान्य से मानव की समस्या को लेकर लेखनी चलाती तो कभी वर्ग विशेष की ऐसी समस्या को लेती हैं जो विशेष होकर भी सामान्य हो सकती है। विश्व में फैले आतंक, फसाद, पलायन, प्रेम, अपनापन, भावनाओं की बात कर लेखिका एक आम व्यक्ति तक यही बात पहुँचाना चाहती हैं कि मानव एक देश और जन्म भूमि की तंग परिधि से निकल एक हो जाए। नासिरा शर्मा के उपन्यासों का प्रकाशन काल के अनुसार संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

1. ठीकरे की मंगनी

नासिरा शर्मा का यह उपन्यास सन् 1989 में किताबघर प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। यह एक ऐसे मुस्लिम परिवार की कहानी है, जो अत्यंत रूढ़िवादी एवं अंधविश्वासी है। यह उपन्यास मुस्लिम समाज में स्त्री की स्थिति और रूढ़ियों से ग्रस्त माहौल की घुटन से बाहर निकलने के संघर्ष की अनोखी दास्तान है। जो मुसलमानों की प्राचीन रूढ़ियों पर प्रहार करता है। इस उपन्यास का आरम्भ महरुख के जन्म के साथ हुई ठीकरे की मंगनी से होता है। इस मंगनी ने महरुख को तीव्र गति से जीवन जीने वाले एक पुरुष की सत्ता को स्वीकारने के लिए बाधित कर दिया था। यह मंगनी की रस्म उसके जीवन की सबसे बड़ी दुर्घटना थी, परन्तु महरुख उस सांचे में ढली हुई थी, जिसे कोई तोड़ नहीं सकता। दृढ़ दृष्टि और संकल्प ने उसे थोपी सत्ता के विरुद्व खड़ा कर दिया।

जैदी खानदान में चार पुश्तों के बाद महरुख का जन्म हुआ। महरुख से पहले जितनी भी लड़कियाँ पैदा हुई थी वे या तो मरी हुई थी या पैदा होने के कुछ दिनों बाद मर गई। हर प्रकार के टोटके किए तब जाकर महरुख जीवित रही। इसके जन्म पर लड्डू बांटे गए, दावतें की गई। बच्ची बच जाए इसलिए महरुख की माँ की बड़ी बहन ने गंदगी से भरे ठीकरे पर चाँदी का रुपया फेंककर महरुख को अपने बेटे के लिए माँग लिया। यह एक प्रकार का टोटका था, जिसे 'ठीकरे की मंगनी' कहा जाता है। महरुख के छह महीने के होने तक भी मन्नतों और सजदों का सिलसिला चलता रहा। जैदी खानदान ने अपनी हैसियत से बढ़कर महरुख के पैदा होने की खुशी मनाई। छठी के दिन महरुख को नानी की ओर से आये थाल में झुनझुने, चटवे, पाजेब

से लेकर सोने के बंद थे। हर तरफ जश्न ही जश्न था, नीली–पीली झड़ियों की तरह खूबसूरत जुमलों की बहार थी। महरुख के जन्म के बाद घर में और चार लड़कियां पैदा हुई। महरुख का अपने दादा से विशेष प्रेम था। वह उनके साथ मजलिसों और मुशायरों में भी जाती थी और खाँसी ज्यादा हो जाने पर वह अपने दादा के पास ही सोती थी।

महरुख का परिवार बस्ती समान कस्बे में रहता था। लम्बाई में फैला महरुख का घर जहाजनुमा था, जिसमें लगभग बाईस बच्चे थे। अपने घर में इक्कीस बच्चों की फौज की सिपहसालार महरुख थी। मोहल्ले में किसी को सबक सिखाना होता तो महरुख की फौज चुटकी भर में दुश्मनों का सफाया कर देती थी। महरुख की धाक पूरे मोहल्ले पर थी। कस्बे के सबसे अच्छे स्कूल में उसका नाम लिखवाया गया। वह छह साल की थी जब उसके दादा जी की मृत्यु हो गई। दादा जी के मृत्यु के पश्चात् उसका अपनी दादी से विशेष स्नेह था। वह घर में हुक्मरां की तरह हुक्म देना जानती थी किन्तु जैसे–जैसे वह बड़ी हो रही थी उसका लड़कों के साथ खेलना और घर से बाहर निकलना बन्द हो गया था। उम्र के साथ–साथ उस पर लगी पाबंदियाँ भी बढ़ने लगी थी। महरुख के बालिग हो जाने पर नहाने की रस्म की गई। जिसमें उसे लाल दपट्े से सजाया गया और उसकी झोली में तरह–तरह के फल डाले गये। उस समय महरुख के भीतर एक ऐसी लड़की का जन्म हुआ जो झिझकना, शरमाना, बुनना और पकाना सब सीखना चाहती थी। महरुख बहुत दयालु स्वभाव की थी। वह दूसरे को दुखी देखकर वह स्वयं उदास हो जाती। हाई स्कूल की परीक्षा पास करने के पश्चात् उसे अपनी नानी द्वारा अपनी और रफत की सगाई के बारे में पता चला तो अचानक एक नये भाव ने उसके भीतर जन्म लिया।

गर्मी की छुट्टियों में नानी के घर पर ही महरुख की रफत से पहली मुलाकात भी हुई। बी.ए. पास कर लेने के बाद रफत चाहता था कि वह एम.ए. के लिए उसे दिल्ली भेजा जाए। महरुख को अपने शहर से दूर दूसरे शहर में भेजने के लिए उसका परिवार तैयार नहीं था। परिवारजनों का कहना था कि लेकिन शादी के बाद रफत चाहे उसे सात समंदर पार ले जाए उन्हें कोई दिक्कत नहीं शादी से पहले लड़की को दूर भेजना उन्हें मुनासिब नहीं। इसके विपरीत महरुख की माँ ने याद करवाया कि जब उन्होंने लड़कियों को पढ़ाना शुरू किया था उस समय भी परिवारजनों ने विरोध किया था किन्तु धीरे–धीरे सब ठीक हो गया था। खालिदा अमजद को समझाती हुई बोली, "मैं तो जानती हूँ कि हम तब नहीं डरे लोगों की बोलियों–ठोलियों से तो अब क्या खाक डरेंगे ? मैं औरत हूँ, खूब अच्छी तरह जानती हूँ कि इस नए दौर में औरत के लिए मजबूती क्या होनी चाहिए ? जमाने के कहने से क्या हमने लड़कियाँ स्कूल से निकलवा ली थी ? अपने ही दोस्त के घर नज़र डालो, नसरीन के मियाँ ने छोड़कर दूसरी कर ली। बीवी चुपचाप मायके आन बैठी। उसी जगह सालेहा को देखा, पढ़ी–लिखी है, मियाँ की नकेल घसीटकर रखती है। कहने को दोनों चचाजाद बहने हैं, एक खानदान, एक माहौल और एक तरह की परवरिश, मगर तालीम से समझ तो बढ़ी, अपना हक तो पहचाना–गलत तेजी की तरफदार तो मैं भी नहीं हूँ, मगर लड़की अपना अच्छा बुरा समझे, यह अक्ल तो तालीम ही दे सकती है।"[1] खालिदा को भी प्रतीत हुआ कि मियाँ अपने भाईयों की बातें में आ रहे हैं तो अगली सुबह उन्होंने पैंतरा बदल लिया। खालिदा का रो रोकर बुरा हाल हो गया था। तो दूसरी तरफ रफत की माँ शाहिदा खाला अलग अपना सिर पीट चुकी थी परन्तु रफत का सिर्फ एक ही कहना था कि उस पर भरोसा क्यों नहीं किया जा रहा ? रिश्तों के वास्ते देकर जमाई की खातिर महरुख को दिल्ली जाने की इजाजत मिल ही गई।

महरुख दिल्ली जाने को लेकर बहुत उत्सुक थी। उसे अपनी अटैची तैयार करते हुये सारे कपड़े बदरंग लग रहे थे। छोटी बहनों के जोड़ों को भी देखा गया। चाचियों ने भी अपनी सलवारों के घेरे और जम्परों को उधेड़कर नए जोड़ों में ढाल दिया और देखते ही देखते महरुख का अटैची रेशमी कपड़ों से भर गया। महरुख के जाते समय सारा परिवार उसे हिदायतें दे रहा था। दादी ने महरुख को समझाते हुये कहा, "अपनी मुट्ठी कस के बांध रखना, फिर फिक्र की कोई बात नहीं है।"[2] महरुख के विदा होने का समय आ गया। महरुख की माँ फूट–फूट कर रोने लगी तभी दादी ने समझाते हुये कहा, "वह जमाना कब का निकल

[1] नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी (दिल्ली : सरस्वती विहार, 1989), पृ॰ 22

[2] नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी (दिल्ली : सरस्वती विहार, 1989), पृ॰ 26

चुका है, जब औरत नए–नए पकवान बनाकर, ससुराल वालों की खिदमत करके मियां का दिल जीतती थी, आज तो उसे इन सबसे साथ बाहरी दुनिया में भी अपने पैर जमाने हैं। घर–बाहर दोनों जगह अपनी खूबी का सिक्का जमाना होता है फिर पढ़ी–लिखी लड़कियाँ किसी पर बोझ बनकर नहीं रहती बल्कि बुरे वक्त में घर को मर्द की तरह संभालती हैं।"[3] अच्छे महुर्त में उसकी विदाई हो गई। उसे इस बात का ज्ञान हो गया कि उसे हर कदम सोच समझकर रखना है ताकि उसके खानदान और स्वयं उस पर कोई धब्बा ना लगे। महरुख को स्टेशन तक छोड़ने के लिए उसके आबू, चाचा, ताया और चचेरे भाई आये थे। ट्रेन चलने लगी और मकान पीछे छुटते गए। ट्रेन में रफत के पास बैठने का महरुख को पहला अवसर मिला था। महरुख ने रफत के कहने पर बुर्का उतारकर बड़े सलीके से दपट्टा ओढ़ लिया। महरुख के अंदर पहली बार एक एहसास जागा, "कितनी आज़ादी है इस खुल के सांस लेने में, कुदरत और इंसान के बीच कितना सीधा रिश्ता बन जाता है।"[4] पूरे रास्ते रफत महरुख को दिल्ली के किस्से सुनाता रहा। महरुख को यह सारी बातें बचपन की परियों के देश की सी लग रही थी। रफत महरुख को पुरानी मान्यताओं की बेड़ियाँ काटकर नये तौर–तरीके अपनाने को कह रहा था। महरुख सब बातें सुनकर पसीना–पसीना हो रही थी। उसे लग रहा था कि जैसे रफत ने कोई नई जिम्मेदारी उसके कन्धों पर डाल दी थी क्योंकि रफत उसका भावी पति था जिस कारण रफत की प्रत्येक इच्छा का ध्यान रखना अवश्यक था।

रफत ने विश्वविद्यालय में हर व्यक्ति से महरुख का परिचय कजिन कहकर कराया था न कि मंगेतर। यह बात महरुख को अच्छी न लगी। विश्वविद्यालय में लड़कियों का लड़कों के साथ खुले आम आधुनिकता प्रदर्शन देखकर महरुख को लगता, "सार्वजनिक स्थलों पर निजी सम्बन्धों का ढिढोरा पीटना क्या अच्छी बात है।"[5] कभी–कभी उसे प्रतीत होता, यह बड़ी–बड़ी बातें, बड़े–बड़े शब्द, समाज, जन समुदाय, संघर्ष, बलिदान, यथार्थ शोषण यहाँ न सिर्फ व्यक्तिगत स्वतंत्रता पाने तक सीमित है।"[6] धीरे–धीरे आत्मविश्वास महरुख में अपने जड़े जमा रहा था। अन्तरराष्ट्रीय समस्याओं पर अब वह फर्राटेदार अंग्रेजी में बहस करती थी। देर रात तक वह लड़के–लड़कियों के साथ बैठती थी। अब वह केवल कॉमन रुम तक ही सीमित नहीं थी। उसका अपना एक दृष्टिकोण था, अपनी एक राय थी। साम्यवादी विचार पर उसकी मजबूत पकड़ हो रही थी। उसकी नजर में आधुनिक हो जाने का अर्थ पश्चिमी सभ्यता को अपनाना कतिपय नहीं है। तभी तो वह अपने सहपाठी रवि की नजायज मांग पर वह तड़प उठती है, "यह महानगरी है या कोई समंदर, जहाँ बड़े–बड़े घड़ियाल कभी इच्छाओं के, कभी महत्वाकांक्षाओं के, कभी भावनाओं के इंसनों को निगलने के लिए इधर से उधर मुँह मारते रहते हैं।"[7] अगले दिन रवि ने लड़के–लड़कियों के बीच खड़ी महरुख की रूढ़िवादिता पर कटाक्ष किए, जिससे महरुख विचलित हो जाती है। वह हैरान होती है कि यदि विश्वविद्यालय में भी औरत को देखने का नज़रिया वही पुराना है तो वह किस अर्थ में अपने को स्वतंत्र, शिक्षित और प्रगतिशाली कहते हैं ? छुट्टियों में महरुख घर जाती है। घर वाले उसके स्वभाव में आये परिवर्तन को देखकर हैरान हो जाते हैं। महरुख मुहर्रम पर होने वाले रीति–रिवाजों को पैसों की फिजूलखर्ची का नाम दे डालती है।

महरुख एम.ए. प्रथम श्रेणी में पास होने के बाद आगे एम.फिल में दाख़िला ले लेती है। तभी रफत पीएच.डी. के लिए विदेश चला जाता है। महरुख उदास हो जाती है। रफत के अमेरिका जाने के कुछ दिनों पश्चात् ही उसकी तरह–तरह की अफवाहें उड़ने लगती है। शुरु–शुरु में रफत के पत्र भी आते रहते हैं परन्तु कुछ दिनों बाद पत्र आने का यह सिलसिला समाप्त हो जाता है। एक दिन महरुख के हाथ में रफत और वैलरी की तस्वीर आ जाती है। महरुख के सिर पर मानो जैसे आसमान सा फट जाता है। उसे लगता है, "सभी ने उसे छला है, कभी प्यार के नाम पर, कभी जिम्मेदारी के नाम पर, कभी रिश्तेदारी के नाम पर।"[8]

---

[3] वही, पृ॰ 27

[4] वही, पृ॰ 29

[5] नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी (दिल्ली : सरस्वती विहार, 1989), पृ॰ 36

[6] वही, पृ॰ 38

[7] वही, पृ॰ 48

[8] नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी (दिल्ली : सरस्वती विहार, 1989), पृ॰ 62

उसने कहीं आना–जाना भी छोड़ दिया था। पूछने पर वह थीसिस का बहाना बना देती थी। रफत की इस हरकत ने उसे अन्दर ही अन्दर से तोड़ दिया था। इस हादसे के चंद महीने ही बीते थे, पर उसकी हालत देखकर लगता था कि वही सालों की बीमारी के बाद उठी हो। वास्तव में रिश्तों का भ्रम जब टूट जाए तो जीने की ललक और उमंग दम तोड़ देती है। उसकी यह हालत देखकर उसके प्रोफ़ेसर भी हैरान थे कि आखिर महरुख को हो क्या गया है।

छुट्टियों में जब महरुख घर पहुँची तो उसकी हालात देखकर सभी घरवाले परेशान हो गए। रफत के बारे में उन्हें किसी ओर माध्यम से पता चल गया था। महरुख के माँ–बाप चाहते थे कि वह अपनी पढ़ाई पूरी कर ले किन्तु महरुख ने मना कर दिया था। धीरे–धीरे उसने स्वयं को इस सदमें से निकालना शुरू कर दिया था। अब उसे केवल नौकरी करने की धुन सवार थी। महरुख के घरवाले नहीं चाहते थे कि वह नौकरी करे परन्तु उसे रोकने का साहस किसी में न था। वह बड़ी मुश्किल से संभलने लगी थी। महरुख के सहकर्मी भी हैरान थे कि इतनी पढ़ी–लिखी होने के पश्चात् भी वह छोटे से स्कूल में नौकरी क्यों कर रही है। वह स्कूल में बहुत कम बोलती थी जिस कारण पुरुष कर्मचारी उससे ईर्ष्या करते थे। गाँव में ही छोटा सा मकान लेकर वह रहने लगी थी। लछमिनिया उसके घर में साफ–सफाई, चूल्हा–चौंका सब करती थी। गरीब की स्थिति को देखकर उसका मन बेहद दुखता था। गरीब जो कर्ज लेते थे वह समाप्त होने का नाम ही नहीं ले रहा था। गाँव में लाठी के जोर पर वोट लिये जाते थे। गाँव में कभी भी किसी औरत के लिए डाक्टर नहीं आया था। महरुख पहली बार डाक्टर विमला को लछमिनिया के लिये लेकर आई थी। इस दौरान दोनों में दोस्ती हो गई। विमला को महरुख ने महीने में दो–तीन बार गाँव में आने को राजी कर लिया था।

इस लम्बी समयावधि में महरुख के लिए बहुत से रिश्ते आने लगे थे, जिन्हें वह मना करती रहती। उसकी दोनों बहनों की शादी हो गई थी। रफत भी विदेश से पीएच.डी. करके लौट आया था और वह भी अकेला। सब बहुत खुश थे। रफत ने लौटने ही महरुख के घर–सन्देश पहुँचा दिया था। सब चाहते थे कि पिछला सब कुछ भुला कर दोनों की शादी कर दी जाये पर महरुख ने साफ–साफ इन्कार कर दिया। महरुख के इंकार करने पर रफत स्वयं उससे मिलने आता है तथा सफाई पेश करते हुये शादी का प्रस्ताव रखता है। परन्तु उसकी एक नहीं चली। ताया, बड़े चाचा और छोटे चाचा का विचार था कि जब लड़का अपने किये पर शर्मिदा है तो बात को आगे नहीं बढ़ाना चाहिए। किन्तु महरुख के पिता उसकी राय जानना चाहते थे। उसकी इस बात में असहमति जानकर वह चुप हो जाते हैं। महरुख के फैसले पर सब लोग उसे लेकर परेशान थे कि इसका क्या होगा ? इसकी सभी बहनें शादी के बाद अलग–अलग घरों में चली जायेगी और भाई अलग–अलग शहरों में जा बसेंगे। माँ–बाप भी एक दिन पूरे हो जायेंगे। अकेली महरुख कहां जाएगी ?

महरुख जीवन की सच्चाई को जान चुकी थे इसलिए वह अपने फैसले पर अडिग थी। वह विवाह को ही जीवन का उद्देश्य नहीं मानती थी। उसकी नजर में जीवन को घसीटने की अपेक्षा जीना अधिक सुखद है। मात्र एक तुच्छ परंपरा को जीवित रखने के लिये जीवन की बलि देना उसे उचित नहीं लगता। यही कारण है कि वह अपने भविष्य में जीवन को एक लक्ष्य प्रदान करती है तथा रफत को कहीं ओर शादी करने का परामर्श देती है। महरुख के मना करने के बावजूद रफत किसी ओर से शादी कर लेता है। सभी बहन–भाईयों की शादी हो चुकी थी। बुजुर्ग भी धीरे–धीरे मृत्यु को प्राप्त हो रहे थे। महरुख रिटायर हो चुकी थी बचे हुये दिनों में बुजुर्गों की सेवा में व्यतीत करने के मकसद से गाँव में ही घर बनाकर रहने लगती है। इस प्रकार वह जीवन के थपेड़े झेलते हुए टूटती है, बिखरती है और स्वयं को दोबारा से एकत्रित करके अपने जीवन को एक नवीन लक्ष्य प्रदान करती है।

2. शाल्मली

शाल्मली उपन्यास का प्रकाशन सन् 1986 में हुआ। इस उपन्यास के अभी तक चार संस्करण निकल चुके हैं। शाल्मली उपन्यास काफी चर्चित रहा है। शाल्मली उपन्यास के माध्यम से दाम्पत्य जीवन के संतुलन में बाधक बनती जा रही पुरुष की परंपरागत मानसिकता के चित्रण के साथ–साथ, आदर्श और आधुनिकता में तालमेल बिठाती आधुनिक नारी का चित्रण किया है। नासिरा शर्मा के 'शाल्मली' उपन्यास में नारी अपने परंपरागत रूप में चित्रित की गई है। वह अपनी मौजूदगी से यह अहसास जगाती है कि परिस्थितियों के साथ व्यक्ति का सरोकार चाहे जितना गहरा हो पर उसे तोड़ दिए जाने के प्रति मौन स्वीकार नहीं होना चाहिए।

यह उपन्यास स्त्री के अंतर्द्वंद्व की कथा है। शाल्मली अपने माता–पिता की इकलौती संतान है। शाल्मली के जन्म से पहले इस दंपत्ति ने अपनी संताने खो दी हैं इसलिए शाल्मली के जन्म से इस दम्पत्ति को अमूल्य खुशी एवम् प्रसन्नता मिली। शाल्मली का लालन–पालन बड़े ही प्रेम से हुआ। शाल्मली के पिता आधुनिक विचारों से धनी और माता परंपरागत, संस्कारशील एवं रूढ़िवादी स्त्री हैं। शाल्मली को आरम्भ से ही प्रत्येक प्रतियोगिता में प्रथम आना सिखाया गया था। शाल्मली के पिता उसके अच्छे मित्र भी हैं तथा वह शाल्मली से बहुत सी अपेक्षाएँ भी रखते हैं। वह चाहते थे कि शाल्मली अपने पैरों पर खड़ी हो, प्रत्येक क्षेत्र में प्रथम आये उसका मान–सम्मान बढ़े और वह अपने माता–पिता का नाम रोशन करे। दूसरी तरफ शाल्मली की माँ के विचार इनसे बिल्कुल विपरीत हैं। उनके अनुसार बेटी पराया धन है तथा पति के घर सुख से रहे यही उसके लिए सबसे बड़ा आशीर्वाद है।

शाल्मली स्वयं भी शादी नहीं करना चाहती थी। वह चाहती थी कि वह अपने पैरों पर खड़ी हो। विवाह न करने का एक दूसरा कारण तो उसकी सखी के अनुभव भी हैं। शाल्मली की बचपन की सहेली ज्योति उसे बताती है कि बी.ए. पास करके भी वह घर पर झाड़ू–पौंछा, बच्चें का लालन–पालन आदि ही करती है। उसकी डिग्रियाँ भी चूहे कुतर गए थे। पुताई के बाद बेटे की बीमारी के कारण वह संभल न पाई। वह कमरे के कोने में ढेर की शक्ल में पड़ी रही, जब संभालने की ओर ध्यान गया तो डिग्री की जगह केवल कागज के टुकड़े मिले। शाल्मली इसी विचार से भयभीत हो जाती है कि कहीं वह भी शादी के पश्चात् पढ़–लिख कर केवल एक गृहणी बनकर ही न रह जाये। एक ओर उसके पिता की आर्थिक दशा ठीक नहीं थी। उन्हें शाल्मली का विवाह घर बेचकर करना पड़ा। शाल्मली के पिता ने बिना किसी को बताये समाचार–पत्र में शादी का विज्ञापन दे दिया। पत्रों की बाढ़ सी आ गई। उसमें से छाँटकर शाल्मली को पाँच पत्र दिखाये गए। किन्तु शाल्मली चुप रही क्योंकि वह माता–पिता की इच्छा का आदर करना अपना धर्म समझती थी। किन्तु मन ही मन वह चाहती थी कि वह इस बार परीक्षा में अच्छे अंक लेकर पास हो। वह सोचती है विवाह तो कभी भी हो ही जाएगा किन्तु पढ़ना संभवतः इस वर्ष के बाद न होगा।

शाल्मली की परीक्षा समाप्त होते ही पिता जी ने नरेश नामक लड़के को घर बुला लिया। जोकि देखने में बिल्कुल सीदा–सादा, सदाचारी था जिसकी जड़ें आज भी गाँव में हैं। वह पिछले पाँच सालों से दिल्ली में नौकरी कर रहा था। कुल मिलाकर नरेश ने सबका दिल जीत लिया। नरेश के अच्छे लगने के कई कारण थे जैसे शक्ल, स्वभाव, तनख्वाह, नौकरी सभी अच्छा था। शाल्मली भी नरेश के घरवालों को बहुत पसन्द आई। उसका घराना पसन्द आया। विवाह तय हो गया। विवाह के सप्ताह पहले उसकी परीक्षा का नतीजा आ गया। शाल्मली ने परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। विवाह धूमधाम से सम्पन्न हुआ। विवाह के पश्चात् विदा हो शाल्मली नरेश के घर आ गई। सास–ससुर गाँव लौट गए। नरेश के भाई भी अपने परिवार सहित नौकरी वाले शहरों को लौट गए। शाल्मली मन से उस कमरे को सवारती और इंटरव्यू की तैयारी में जुट गई। उसे एक ही धुन सवार थी कि वह सारा दिन घर में क्या करेगी। उसे भी नौकरी कर लेनी चाहिए। घर का काम तो सुबह ग्यारह बजे तक समाप्त हो जाता है घर में खाली बैठकर वह करेगी क्या ? शाम को नरेश घर लौटता, नहाता उतनी देर में खाना बनाकर शाल्मली थाली सजाकर नरेश के आगे रख देती। नरेश शाल्मली को पत्नी रूप में स्वीकार कर बहुत ही खुश था। उसने कभी सोचा न था कि उसे इतनी अच्छी पत्नी मिलेगी। कुछ दिनों बाद शालमली के इंटरव्यू की तारीख आ गई उसने नरेश को इंटरव्यू के बारे में बताया किन्तु नरेश कहता है कि क्या करोगी नौकरी करके ? परन्तु शाल्मली ने उसे मना लिया और इंटरव्यू में शामिल हो गई।

नरेश और शाल्मली के स्वभाव में जमीन–आसमान का अंतर है। शाल्मली विनोदी स्वभाव की है वह चाहती है कि नरेश से जी भरकर बातें करे किन्तु नरेश कम बोलता था। शाल्मली को अपने पिता से हर विषय पर विचार–विमर्श करने की आदत है। उसे नरेश के घर में कभी–कभी बहुत बेचैनी होती। हर दिन वह इस उम्मीद से गुजारती कि आज नरेश के साथ शाम को चाय के समय जी भर कर बातें करेगी। परन्तु आते ही नरेश चेयरमैन, डायरेक्टर, बॉस आदि किसी की बातें ले बैठता जिनसे शाल्मली का कोई लेना देना नहीं था। नरेश की बातों से वह ऊब जाती किन्तु इसकी भनक वह नरेश को न होने देती। धीरे–धीरे उसे नरेश की संकीर्ण मानसिकता का भी पता चल गया। नरेश के अनुसार विवाह होने के बाद पढ़ाई का कोई महत्व नहीं। लड़कियाँ केवल विवाह के लिए पढ़ती हैं। नरेश की बातें सुनकर शाल्मली हैरान हो जाती है। धीरे–धीरे नरेश की हकीकत शाल्मली के सामने आ गई। विवाह के कुछ समय पश्चात् ही शाल्मली को नरेश और अपने

सम्बन्ध पति–पत्नी की अपेक्षा स्वामी और दासी से प्रतीत होने लगे। नरेश शाल्मली को बेजान लिबास की तरह समझने लगे जिसे जरूरत पड़ने पर पहना जाए और जरूरत समाप्त करते ही उतारकर फेंका जा सके। शाल्मली और नरेश में तनाव निरन्तर बढ़ता चला जाता है जिसका प्रमुख कारण नरेश में अहंकार की भावना होती है। नरेश शाल्मली पर अपना पूरा अधिकार चाहता है चाहे वह योग्यता या प्रतिभा के आधार पर उससे हीन है– "अब तुम मेरी नकल मत करो।..... तुम औरत हो और अपनी मर्यादा को पहचानो।"[9]

शाल्मली विवाहित जीवन की गाड़ी को किसी न किसी तरह खींचती रहती थी। ससुराल और मायके में दिन प्रतिदिन यही प्रश्न उठने लगते हैं कि बहू की गोद कब हरी होगी ? लेकिन शाल्मली के पास इस बात का कोई जवाब न था क्योंकि नरेश किसी तीसरे की जिम्मेदारी उठाने को तैयार न था। एक दिन कपड़े धोते समय नरेश के कपड़ों से उसे कागज का एक टुकड़ा मिलता है जो कि गाँव से आया तार है। जिसमें पैसे की माँग है। शाल्मली नरेश को पैसे भेजने को कहती है। नरेश को लगता है कि शाल्मली बहुत चतुर एवं गहरी औरत है जो कि उसे अपमानित करना चाहती है।

नरेश हर समय स्त्री–पुरुष की रेखा खींचता रहता है। उसे लगता है शाल्मली के हाथ बँटाने से उसका रुतबा कम हो जाएगा। नरेश के अनुसार घर का काम औरत का होता है और कमाना मर्द का। शाल्मली जान चुकी थी नरेश का संसार घर, दफतर, मित्र तक ही सीमित था। वैसे उसे परीक्षाफल आने का इंतजार था। शाल्मली सोचती कि यदि उसका चुनाव हो गया तो क्या नरेश उसे ट्रेनिंग को भेजेगा ? क्या उसे नौकरी करने देगा ? परन्तु होता कुछ अलग है। मसूरी जाने से पहले नरेश ने उसे कहा कि वह बेफिक्र होकर जाए।

नरेश का सेक्स संबंधों को लेकर व्यवहार ठीक नहीं था। उसके न चाहते हुए भी वह अपनी हवस पूरी करता था। शाल्मली को लगता कि वह ऐसे हवसी आदमी के साथ जी नहीं सकती।

"आह। यही मेरा भाग्य। कारावास, यातना, अपमान, पीड़ा, छटपटाहट और एक बंद गली का अंधेरापन।"[10]

एक घायल हिरनी के समान वह तड़प उठती। दिन गुजरते गए और उसके भीतर बैठी औरत हर प्रकार से बागी होती गयी। नरेश को उसका नौकरी करना अच्छा नहीं लगता वह हर काम उससे करवाता। जब उसने भाग्य से मिली इतनी बड़ी नौकरी को ठुकराने की बात कही तब शाल्मली ने कहा कि वह इतना पढ़–लिखकर घरेलू कामों के सहारे अपना दिन गुजार नहीं सकती। तब वह कहता, "तुम औरतें अपने को जाने क्या समझती हो ? बाहर नहीं निकलोगी, काम नहीं करोगी, तो संसार के सारे काम ठप्प हो जाएंगे..... यह जान लो तुम, यह फैसला मेरी भावनाओं के मूल्य पर नहीं, बल्कि इस घर के मूल्य पर कर रही हो।"[11]

नरेश को बहुत जल्द बड़ा बनना था। इसलिए जब वह शाल्मली की पासबुक देखता है तो उसे डी.डी.ए. का फ्लैट बुक कराने की सलाह देता है। कभी कहता कि शेयर खरीद लेना, छोटा–मोटा बिजनेस में हिस्सेदारी करना ताकि आमदनी बढ़ती रहे। एक दिन बस की प्रतीक्षा में देर हो गयी तो कहता है कार बुक करा ले औरों से लिफट लेने में अब यह स्वयं को छोटा महसूस करता था। वह यह नहीं जानता था कि दिल्ली का हर आदमी दूसरे से बड़ा है और हर दूसरा आदमी पहले से। उसके मस्तिष्क पर सोते जागते कार और मकान का ही भूत सवार था।

नरेश अब अपने ऑफिस से अधिक शाल्मली के काम में रूचि लेने गया था। उसे अपने भविष्य से ज्यादा शाल्मली का भविष्य उज्जवल नज़र आता था। डी.डी.ए. के मकान के लिए जब नरेश ने आड़े–तिरछे रास्ते सुझाए तब शाल्मली सोचती है, "कैसे नरेश को समझाए कि मंत्री का सिफारिशनामा नियम तोड़कर मकान तो दिलवा देगा, मगर उसकी कीमत शाल्मली को कभी–न–कभी अदा करनी पड़ेगी। चाहे उनकी सिफारिश पर कोई गलत काम करने की या फिर अफवाह और बदनामी की चादर ओढ़ने की।"[12]

[9] नासिरा शर्मा, शाल्मली (दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 1994), पृ॰ 74

[10] नासिरा शर्मा, शाल्मली (दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 1994), पृ॰ 40

[11] वही, पृ॰ 69

[12] नासिरा शर्मा, शाल्मली (दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 1994), पृ॰ 61

जैसे–जैसे शाल्मली को नरेश एक विशेष दायरे में कसता चला गया वैसे–वैसे शाल्मली के काम का दायरा दिमागी रूप से फैलता चला गया। अपने विचार, अपनी इच्छा, अपनी चेतना को वह अपने काम में साकार होते देखना चाहती। उसका फल यह निकला कि उसकी रिपोर्टों में, उसके काम में एक विशेष रंग छलकने लगा था, जो काम सूक्ष्मता के साथ एक निष्ठा को भी दिखाता, जिसके कारण शाल्मली के लिए एक आदर–भाव अजनाने ही उसके जानने वालों के मन में उभरने लगा था। उसने नरेश को अपने रिश्तेदारों को ऋण के रूप में दी जाने वाली राशि के विषय में न रोका न पूछताछ की। सिर्फ उसे उसका दो मुँहापन पसन्द नहीं था। एक तरफ उसकी भावनाओं और अभिव्यक्ति पर रोक लगाकर रिश्तेदारों से दूरी का पाठ पढ़ाता और दूसरी तरफ अपने को सम्बन्धियों में हरिश्चंद्र दिखाता। शाल्मली को उसने संबंधों के बीच सिर्फ पुल बनाकर रखा था, जिससे सिर्फ गुजरा जा सकता था। संसार के बहुत से कार्य बेमन से करने पड़ते हैं। शाल्मली यह जान गयी थी।

नासिरा शर्मा की नायिका नायक के कार्यों को देखकर सोचती है कि लड़की की जगह पर लड़के की विदाई क्यों नहीं होती। कन्यादान के स्थान पर युवक दान क्यों नहीं आरम्भ होता। यदि ऐसा होता तो साँस जमाई को डांटते हुये कहती– "क्या सिखाया है तेरे माँ–बाप ने मुँह जले। कोई संस्कार तो दिया ही नहीं, ऊपर से दान–दहेज में धेला भी नहीं।"[13]

नरेश देर रात घर आता तब भी यही कहता कि उसकी पूछताछ करने का औरत को कोई अधिकार नहीं है। नरेश का उसे बार–बार औरत कहना शाल्मली को अखरता था। एक दिन तो उसने साफ–साफ कह दिया कि उसके कारावास से वह कभी भी मुक्त हो सकती है। नरेश के भीतर दिनोंदिन अनजान भय उसे दबोचने लगा ''कि शाल्मली का बढ़ता कद, उसके अपने व्यक्तित्व से ऊंचा उठता जा रहा है, उस पर छाता जा रहा है यदि उसने शाल्मली की लगाम थामकर रखी तो, यह घोड़ी उसके अस्तबल में नहीं रह पाएगी।"[14] शाल्मली सोचती है कि विवाह के कुछ वर्षों बाद ही क्यों कोई आदमी चाहता है कि उसकी औरत पिछली जिंदगी भूलकर स्वयं को नये ढांचे में ढाल ले? शाल्मली ने सभी नारियों का प्रतिनिधित्व करते हुये प्रश्न उठाया है– "हम औरतें क्या हैं? गीली मिट्टी ? कितनी बार हम अपने को मिटाकर नए–नए रूप में ढलें ? यानी हमारा कोई अस्तित्व नहीं, अधिकार नहीं, विवाह का अर्थ है, अपना जन्म स्थान भुला देना और एक मनुष्य की इच्छा और रूचि का दास बन जाना ?"[15]

कार लेने के बाद नरेश थोड़ा नरम सा हो गया। कार की सफाई–धुलाई में ही वह लगा रहता। शाल्मली नरेश की नज़रों में केवल पैसा पैदा करने वाली मशीन थी। घर में दोस्तों को दावत देने का हक केवल उसी का ही था पर घर में बिखरी चीजें समेटने में सहायता करने में नरेश का अहम् आड़े आ जाता है।

नरेश इतना व्यवहार कुशल था कि वह सार्वजनिक स्थलों पर, समारोहों में शाल्मली की मुक्त कंठ से प्रशंसा करता। ऐसा व्यवहार देख शाल्मली को समझ में नहीं आता कि वह क्या करे। डी.डी.ए. का मकान मिलते ही नरेश बेहद खुश हो गया। किन्तु अपनी पत्नी का सुख–दुख पूछने में वह अपना अपमान समझता था। वह इस बात से संतुष्ट रहता कि उसके कारण किसी औरत को सौभाग्यवती बनने का अवसर मिला। वह शाम छः बजे कार लेकर निकलता था, नौ बजे से पहले घर लौटकर नहीं आता। उसके व्यवहार को देखकर शर्मा कहता था कि– "एक पुरुष वास्तव में स्त्री में क्या देख्ता है और उससे क्या पाना चाहता है ? किस गुण में उसकी इच्छा की तृप्ति निहित है, मोह में, धन में, रूप में, सेवा में, सर्म्पण में, आदर में, बलिदान में, बुद्धि प्रखरता से.....।"[16] ये सभी गुण शाल्मली में थे। किन्तु नरेश का अहंकार भाव उसके इन गुणों को अनदेखा कर देता है।

नरेश उसे पैसे की खान समझता था। हर चौथे दिन दो–तीन सौ रुपये खर्च कर आता था और उलटा उसी से पूछता था कि दो–दो कमाई कहा जाती हैं। नरेश अपनी तनख्वाह खुद पर ही खर्च करता

[13] नासिरा शर्मा, शाल्मली (दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 1994), पृ॰ 67

[14] वही, पृ॰ 75

[15] वही, पृ॰ 76

[16] नासिरा शर्मा, शाल्मली (दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 1994), पृ॰ 88

था। उसका कहना था कि मर्द बन रही हो तो घर का बोझ उठाओ। शाल्मली उठा भी लेती है। नरेश की कुंठा इस बात की थी वह पोजीशन में उससे कम था। पहले तो वह उसे लेने जाता था लेकिन बाद उसे लगने लगा कि क्या वह ड्राइवर है जो बेगम साहिब का इंतजार करे। शाल्मली ने नरेश को पाने के लिए हर प्रयत्न किया यहाँ तक कि उसने बच्चे के जीवन की आहुति दी। यदि वह ऐसा न करते तो आज नन्हीं सी जान को लेकर अबला की मूर्त बन बच्चे के पिता को ढूँढती रहती।

नरेश के शौंक बड़े–बड़े हो गये थे जिन रास्तों पर वह चल पड़ा था वह पतन के द्वार थे। नौकरी पेशा लोग यदि इनमें पड़ जाएँ तो घर खर्च के पैसे कहां से जुटा पायेगे लेकिन उसे कोई फिक्र नहीं थी। उसने मीठा बोलना तो दूर कड़वा बोलना भी बंद कर दिया था।

शाल्मली को किसी सरकारी काम से शिलांग जाना था। उसने नरेश को भी साथ चलने को कहा किन्तु नरेश ने कहा कि वह कहीं नहीं जायेगी। कारण बता देना कि पति पसन्द नहीं करता। शाल्मली का कहना था कि यदि सभी औरतें ऐसा करने लगी तो सरकारी नौकरी का पालन कैसे होगा। बिस्तर में उसने अपनी ओर शाल्मली को घसीटते हुये कहा था कि– "तुम जानना चाहोगी पुरुष की दृष्टि में औरत क्या है ? भोगने की वस्तु..... वही उसकी पहचान है।"[17] शाल्मली के बदन को आग लग गयी। वह जंगली बिल्ली की तरह नरेश पर झपट पड़ी।

शाल्मली ने पहली बार अपना विवेक खोया था। सीने में घुटती तेज चीत्कार को कहीं गहरे दबाकर पागलों की तरह उसके अपने आपको बाथरूम की दीवार पर मारा था।

अपने कार्य की क्षमता के आधार पर शाल्मली पर्यावरण विभाग के डायरेक्टर के पद पर आसीन हो गयी। एक बार अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन होने उसे विदेश जाना था। जब उसने नरेश को भी साथ चलने को कहा तो उसने साफ इंकार कर दिया। शाल्मली का विश्वास सम्बन्धों से उठने लगा था। वह नरेश को छोड़ विदेश चली गई।

विदेश से लौटने पर नौकरानी ने जो उसे घर का हाल सुनाया। उससे उसका समूचा अस्तित्व ऊपर से नीचे तक हिल गया। उसे लगा कि उनके परिश्रम का फल दूसरों की गोद में जा रहा है उसे कभी लगा नहीं था कि नरेश इतना बड़ा विश्वासघात करेगा। उसने सोच लिया कि वह नरेश के समक्ष गिड़गिड़ायेगी नहीं। कई बार उसके मन में आया कि वह नरेश से बिना कुछ कहे सम्बन्ध विच्छेद कर ले। लेकिन उसने नरेश से चर्चा की तो तभी नरेश उससे कहता है कि मैं मर्द हूँ मैं किसी से भी सम्बन्ध बना सकता हूँ। नरेश की ऐसी बातें सुनकर शाल्मली उससे कहती है– "मैं बिना किसी धर्म ग्रंथ बिना संविधान की सहायता लिये तुम्हें मुक्त कर देती हूँ यदि तुम्हें उसके साथ रहकर अपना जीवन सार्थक लगता हो तो..... ।"[18]

शाल्मली ने सोच लिया कि वह घर छोड़ेगी नहीं। कारण इस घर की हर चीज उसकी कमाई की है या पिता जी ने दी हुई है। इस घर से यदि कोई चीज बाहर जायेगी तो वह नरेश होगा।

शाल्मली की सहेली सरोज उसे तलाक लेने की सलाह देती थी। किन्तु शाल्मली कहती है कि सम्बन्ध तोड़ना इतना आसान नहीं, जितना लोग मशीनी रूप में इसे सरल समझते हैं। शाल्मली अपने चारों ओर फैले घरों को देखती और कहती है कि इन घरों में रहने वाले प्राणी क्या वास्तव में अपनी इच्छा से रह रहे हैं ? वह भी एक आदमी के लिए अपना जीवन को नरक बना रहे हैं। परन्तु सरोज का कहना था कि मर्दों को औरतों को ठगने में मजा आता है। शाल्मली की अच्छी सहेली होने पर भी वह उसे समझ नहीं पायी। उसके ही शब्दों में "तुम भी विचित्र हो एक ओर घृणा और अपमान से सुलगती हो, दूसरी तरफ उसके प्रति गहरा अनुराग रखती हो ?"[19] ऐसी महिला शायद उसे पहली बार मिली थी।

शाल्मली ने अपने पति को अतिथि के रूप में स्वीकारा था। अतिथि भगवान का दूसरा रूप होते हैं। सेवा करना उसका मर्ज था। नरेश भी बदल गया था। अधिकतर शामें वह घर पर ही गुजारता था। दूसरी औरत से उसका संबंध था या नहीं शाल्मली को बाद में कुछ पता नहीं चला। दोनों अपने अंदर अपनी–अपनी तरह से जीवन यात्रा कर रहे थे। शाल्मली जब भी सड़क पर चलते जोडों को देखती तो उसे लगता कि

[17] वही, पृ॰ 128

[18] नासिरा शर्मा, शाल्मली (दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 1994), पृ॰ 146

[19] नासिरा शर्मा, शाल्मली (दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 1994), पृ॰ 163

जरूर दुखी होंगे। ऊपर से संसार को दिखाने के लिए नाटक कर रहे हैं। उसका विश्वास, संतुलित व्यवहार, सब कुछ एक भय मिश्रित अविश्वास में बदलने लगा था। जो फैसले पहले वह क्षणभर में लेती थी। अब वह हाँ–ना के झूले में झूलते रहते। कुछ महीनों बाद दोबारा शाल्मली को जीने की ललक जागी। जो हो रहा है या होने जा रहा है। न उसने तलाक लिया न नरेश के सामने झुकी। जैसे चल रहा है, वैसे चलने दिया।

3. जिन्दा मुहावरे

नासिरा शर्मा का उपन्यास 'जिन्दा मुहावरे' राही मासूम रजा के 'आधा गाँव' की अगली कड़ी है। हिन्दुस्तान बंटवारे के दर्द को करोड़ों लोगों ने भोगा। फैजाबाद के रहमी साहब अपना गाँव, घर, जमीन, अपना वतन छोड़कर जा न सके। पर उनका छोटा बेटा निजाम बंटवारे के समय पाकिस्तान चला गया। वहाँ पर अमीर बनने पर भी वह अपने वतन, अपने लोगों को भूल न सका। इसी पीडा और दर्द को लेखिका ने अपनी कलम से उकेरा है। इस ऐतिहासिक हादसे से उपजी पीड़ा किसी एक धर्म की न होकर समूची इंसानियत की है। नासिरा शर्मा ने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि राजनैतिक स्वार्थों के कारण यदि धरती बंट भी जाए किन्तु इंसान रिश्ते नहीं बंटते– "दोनों तरफ के बाशिन्दों के दर्द की जमीन एक है। खून का रंग वही इंसानी है बस जरा सा फर्क यह है कि इधर वाले जाने वालों के गुनाह की सलीब पर टांग दिए गए हैं और उधर वाले लगातार यादों के तहखानों से गुजर रहे हैं।"[20]

निजाम के साथ पाकिस्तान की ओर जाने वालों की तादाद तो बड़ी नहीं थी किन्तु इधर–उधर क गांवों के लोगों का एक छोटा–सा काफिला था। सभी ने अपने साथ जरूरत का सामान और पैसों की पोटलियाँ ली हुई थी। सिर्फ निजाम खाली हाथ था। वह सबके बीच अजनबी था। अधिकांश लोग भयभीत होकर भाग रहे थे। सोच केवल इतनी थी कि फसाद खत्म होने पर सब वापिस लौट आयेंगे। सफर के बीच में हथियारबंदों ने लोगों को मारा–पीटा भी और कई औरतें और लड़कियाँ गायब हो गई। रास्ता मुश्किलों भरा था।

निजाम कराची पहुँचा। पहले उसने ढोंने, फेरी लगाने का काम शुरू किया। अपना घर–बार, जमीन छोड़कर जिस मुल्क को अपना समझकर आया था उसने उसे दो गज जमीन भी न दी। उसी के साथ आए हुए लोग स्वयं को शेख, सय्यद बन कर आलीशान घरों कारों के मालिक बन गए जो भारत में सड़कों पर चप्पल चटखाते फिरते थे। साल भर में जरूरत भी चीजें निजाम की कोठरी में मौजूद थी। निजाम के पाकिस्तान चले जाने के बाद उसके इंतजार की ललक सबकी आँखों में देखी जाती। सिन्ध की जमीन पर पिछले पाँच वर्षों के बीच मुहाजिर नाम की धारा साफ बहती नज़र आने लगी थी। निजाम इस धारा की मजबूत कड़ी था। अपनी कड़ी मेहनत से वह कराची में निजाम गारमेन्ट के नाम से जाना जाता था। उसने एक बार माँ–बाप से मिलने के लिए वीजा प्राप्त करने के लिए काफी दौड़–धूप की। किन्तु असफल रहा। तब उसे महसूस हुआ कि वह कराची जैसे बड़े शहर में कितना अकेला है। मौत का ध्यान आते ही वह घर में अकेला घबरा जाता कि यदि उसका मरना छत के अन्दर हुआ, तो किसे पता चलेगा कि अन्दर लाश सड़ रही है। जब उसे एक पत्र द्वारा ज्ञात हुआ कि माँ का स्वर्गवास हो गया और उसकी मंगेतर की शादी, तब उसने अपने लिए लड़की ढूँढना शुरू कर दिया। एक परिवार फैजाबाद से आया था। लड़की के पिता एक साधारण नौकरी करते थे। सबीहा उसे इसलिए पसन्द आई थी क्योंकि वह उसकी मंगेतर सुगरा की तरह गेहुँए रंग की थी। शादी के ठीक साल बाद वह एक लड़की का पिता भी बन गया और कारोबार में फायदा भी हुआ।

निजाम ने इम्पोर्ट–एक्सपोर्ट का कारोबार शुरू किया। इसी सिलसिले में वह दो हफते अमेरिका भी जाकर आया था। किन्तु वह चैन से नहीं बैठ सका क्योंकि अब उसे लखपति से करोड़पति बनना था। उसके बच्चे जब दादा–दादी के बारे में पूछते तब उसके पास कोई उत्तर नहीं होता। घर की याद हमेशा उसे सताती रहती। कई बार वह विदेश गया किन्तु हिन्दुस्तान जाने के नाम से उसको सुस्ती दबोचने लगती। सबीहा कई बार उसे समझाती जो बीत गया उसे भूल जाए पाकिस्तान को ही अपना देश मान ले। फिर भी यादें उसका पीछा नहीं छोड़ती।

[20] नासिरा शर्मा, जिन्दा मुहावरे (नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 1994), पृ॰ 8

अंत में उसने अपने भाई को लिख दिया कि वह पच्चीस तारीख को घर आ रहा है। उसका खत मिलते ही पुलिस आधी रात को उसके घर तलाशी लेने आ गई। सारा गाँव एकत्रित हो गया। बेटे के आने की खुशी में सजाया हुआ घर बिखर गया। तलाशी में बिना कुछ पाए जैसे ही पुलिस गयी, चाचा रहीम इस दुनिया को छोड़ चले गए। वीजा मिलने पर भी जंग छिड़ गयी। अतः निजाम का आने का रास्ता बन्द हो गया।

नासिरा शर्मा ने एक छोटी–सी घटना का जिक्र किया है, जिससे देश के प्रति लोगों के मन के प्यार को जाना जा सकता है। सबीहा की माँ हिन्दुस्तान से आते समय अपने घरों को ताले लगाकर आयी थी। चाबियों का गुच्छा उसने वर्षों से संभाले रखा था। जैसे ही जाना तय हुआ उसने जंग लगी चाभियों का वह गुच्छा निकाला था। परन्तु अब उसे देख–देख कर रोती कि क्या पता कब घर के ताले खोलने का अवसर उसे मिले ? मुल्क की हालत खस्ता हो गयी। निजाम को भाई का खत मिलते ही उसके अंदर ही अंदर आग जलने लगी। अजमेर वाले खवाजा को वह उठाकर पाकिस्तान तो नहीं ले जा सकता। इधर मुहाज़िरों की बढ़ती खुशहाली सिंध के आवाम को सहन नहीं हो रही थी। गंगा और सिंध में इतने वर्षों में इतना पानी बरसा था कि उन जगहों में अपने रिश्ते ढूँढने की कोई खास मजबूरी समझ में नहीं आती थी।

निजाम को जिन्दगी जीने का मजा सही मायनों में तब आया जब हर तरफ उसके नाम के साईन बोर्ड, होडिंग बाजारों और दुकानों में नज़र आते। हर समारोह में उसकी उपस्थिति जरूरी मानी जाती। आज उसकी हालत ऐसी थी कि नेता और प्रजा दोनों को खरीदने की क्षमता रखता था। ऐसी ही खुशी में उसके बेटा का अपहरण हो गया। उसका निजाम के दिल पर कुछ ऐसा असर हुआ कि उसकी जिन्दगी बदल गई। इस परेशानी से भागने का उसके पास एक ही रास्ता था काम में व्यस्त रहना। राजनीति में कुछ ऐसा तूफान आया कि भुट्टो को फाँसी दी गयी।

निजाम का भतीजा गोलू हिन्दुस्तान में क्लेक्टर बना। उसका बड़ा भाई इमाम जो कल तक तिल–तिल मर रहा था अब पल–पल जीने लगा। अब मानों उसका बुढ़ापा भाग गया। उसकी झट फूफी की लड़की मासूमा से शादी भी कर दी गयी। उधर मुहाजिरों को पाकिस्तान में ब्लैक मेलर का खिताब दे दिया गया। आगजनी, लूटपाट, बम धमाके, खून, औरतों की बेइज्जती आम बात हो गई। ऐसे समय निजाम को लगा कि एक बार उसे हिन्दुस्तान जाकर आना चाहिए। इस समय वीजा मिलने में दिक्कत नहीं आई।

गोलू चाचा का स्वागत करने के लिए हवाई अड्डे पर जाता है। कस्टम पर निजाम इतना जज्बाती हो गया था कि दिल की तपिश के साथ उसका सारा वजूद धड़क रहा था। अपने बड़े भाई इमाम को भी वह पहली नज़र में पहचान न सका उस दिन उसने वही खाने की फरमाईश की जिसमें अरहर की भाप उड़ाती दाल हो। पैतांलिस वर्ष बाद अपनी धरती का खाना वह खा रहा था।

निजाम को आये चार दिन हो गए लेकिन उसकी प्यास नहीं बुझी। मिलने वालों का सिलसिला जारी था। निजाम मिलने आने वाले की बेटियों को ध्यान से देखता। उसकी बड़ी इच्छा था कि वह अपने अख्तर के लिए हिन्दुस्तान से बहू ले जाए। अपने अजीज दोस्त सैफउल्लाह से जब उन्होंने बेटी का हाथ बहू के रूप में माँगा तो सैफ ने कहा– "ऐसे हालत में अपनी लड़की का हाथ कैसे किसी पाकिस्तानी लड़के के हाथ में थमा दूँ ? पहले के लगाए दाग धोते–धोते चालीस–पैंतालिस साल गुजर गए और अब फिर वही बात.....।"[21]

जब कोई व्यक्ति अपनी लड़की को नेपाल, अफगानिस्तान, ईरान नहीं ब्याहता फिर पाकिस्तान ब्याहने का मतलब क्या है। निजाम चालीस साल तक पाकिस्तान में ही अपनी जड़ें ढूँढते रहे।

पाकिस्तान की जीत पर यदि मुसलमान खुशी मनाता है तो जासूस कहलाता है। एक तो मुसलमानों में पहली बार मध्य वर्ग पिछले पच्चीस–तीस वर्षों में धीरे–धीरे करके जो पनपा है, उसे ही एक तरफ संकीर्ण राजनीति तोड़ने की कोशिश कर रही है। आज भी "बंटवारा हमारी सोच का, हमारी भावना का हिस्सा बन चुका है। उस मानवीय विलाप से हम आज भी निकल नहीं पाए हैं, शायद अगले पचास वर्ष तक इससे निकल भी नहीं पाऐंगे।"[22]

[21] नासिरा शर्मा, जिन्दा मुहावरे (नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 1993), पृ॰ 123

[22] नासिरा शर्मा, जिन्दा मुहावरे (नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 1994), पृ॰ 125

निजाम ने सोचा हिन्दुस्तान से बहू ले जाना अब व्यर्थ है। एक और बात पर उसका ध्यान आकर्षित हुआ। हिन्दुस्तान में मुसलमानों की स्थिति बड़ी खराब हो गई जैसे पाकिस्तान में हिन्दुओं की। उसके भतीजे गोलू के आगे पीछे अरदली, चपरासी, कर्मचारी, दूसरे हकीम आगे–पीछे घूम रहे थे। निजाम ने दिल ही दिल में हिसाब लगाया कि करोड़ों का मालिक होकर भी यह शान उसको कराची में नसीब नहीं हुई। दूसरी तरफ हिन्दुओं की पूजा में उसे शामिल होने का आग्रह किया जा रहा था– "हिन्दू–मुसलमान फसाद की खबरे तो पाकिस्तान में पहुँचती रही थी, मगर यह इत्तला वहाँ नहीं पहुँची थी कि मुस्लमान अफसर के नीच हजारों मातहत हिन्दू भी हो सकते हैं और दंगे–फसाद में मारे जाने के बाद भी इस मुल्क में उनकी खुशहाली पिछले चालीस वर्षों में पनप उठी है।"[23]

नूरी के पिता ने निजाम से कहा था कि यदि उनका बेटा चाहे तो वे उसे बहु के रूप में देने को तैयार हैं। जब अख्तर से यह पूछा गया उसने जो कहा उस पर पाठक सोचने के लिए मजबूर हो जाता है। जीन्स पर मर्दानी शर्ट पहने वह लड़की स्मार्ट और ज़हीन लगी।

इमाम ने उसे ढेरों बातें की पर निजाम का दिल उन बातों में नहीं था। अम्मा–अब्बा की भी कोई चीज उठाकर ले जाने की बात उसने सोची नहीं। उसे एक ही बात कचोटती रही थी कि– "जिस चीज को हासिल करने के लिए उसने जिन्दगी के पैंतालिस साल गंवा दिए वह तो उसके हर रिश्तेदार के पास मौजूद है, फिर उसने हासिल क्या किया ?"[24] निजाम फैसला नहीं कर पा रहा था कि क्या वह हमेशा के लिए अपनी जन्म भूमि भारत में रुक जाए या और पाकिस्तान वापिस लौट जाए। इंसान की यह जिंदगी कितनी कम होती है अपने को और इस दुनिया को समझने के लिए निजाम को अब हिन्दुस्तान की ये हवायें रास नहीं आ रही हैं। पहले वीजा बढ़ाने की बात थी अब जल्दी चलने की। दोनों भाई अब जान गये थे कि अब मिलना मुश्किल है। अपने मन में दोबारा मातृभूमि को न पाने की हसरत लिए हुए निजाम चला गया।

4. सात नदियां : एक समन्दर/बहिश्ते ज़हरा

'बहिश्ते ज़हरा' उपन्यास ईरानी क्रान्ति पर लिखा विश्व का पहला ऐसा उपन्यास है जो एक तरफ पचास साठ साल पुराने साम्राज्य के उखड़ने और इस्लामिक गणतंत्र के बनने की गाथा कहलाता है और दूसरी तरफ मानवीय सरोकारों और आम इन्सान की आवश्यकताओं की वकालत करता नज़र आता है। जो नासिरा शर्मा के उपन्यास 'सात नदियाँ एक समन्दर' का ही नाम परिवर्तित कर प्रकाशित किया गया उपन्यास है। नासिरा शर्मा का कहना है– "मेरा उपन्यास 'सात नदियाँ एक समन्दर' का नाम अब 'बहिश्ते–ज़हरा' है। यह उपन्यास उर्दू में भी आ रहा है।"[25] लेखिका ने कहा है कि मैंने अपना पहला उपन्यास बहिश्ते–ज़हरा के नाम से लिखा था जिसको श्रीपत राय जी सरस्वती प्रेस से छापना चाहते थे लेकिन कुछ कारणों से श्रीपत जी को सरस्वती प्रेम बन्द करना पड़ा। इस कारण यह उपन्यास हरदयाल जी की राय पर अभिव्यंजना में छपने को दिया गया। उन्होंने कहा कि यह हमारा प्रकाशन इतना बड़ा नहीं है कि हम इस नाम को स्थापित कर पाएँ, कहीं आपका उपन्यास नाम के कारण पीछे न रह जाये। इसलिए यह उपन्यास 'सात नदियाँ एक समन्दर' के नाम से छपा। श्रीपत राय ने भी नासिरा शर्मा को कहा कि आपको यह नाम नहीं बदलना चाहिए था फिर नाम बदलने का अवसर जब नासिरा शर्मा को मिला तो उन्होंने इसका नाम 'सात नदियाँ एक समन्दर' से बदलकर 'बहिश्ते ज़हरा' रखा दिया। नासिरा शर्मा को लम्बी बेचैनी के बाद जो सुख उन्हें मिला उन्हें प्रतीत हुआ जैसे उनका पहला उपन्यास छपा है।

इस उपन्यास का प्रकाशन सन् 2009 में वाणी प्रकाशन, दिल्ली से हुआ। यह उपन्यास नासिरा शर्मा का ईरानी क्रान्ति पर लिखा गया हिन्दी का एक विशिष्ट उपन्यास है। उपन्यास में सात सहेलियाँ–महनाज, परी, सूसन, मलीहा, अख्तर, सनोबर तथा तय्यबा सात नदियों की प्रतीक हैं जो क्रान्ति रूपी समंदर में विलीन हो जाती हैं। ईरानी क्रान्ति के चलते ईरान में राजनैतिक वातावरण बेहद गर्म था। सामंती व्यवस्था के लोग एकाएक गायब हो रहे थे। पचास वर्ष पुरानी सामंती व्यवस्था के उन्मूलन का बीड़ा युवा क्रांतिकारियों ने उठा

[23] वही, पृ॰ 127

[24] नासिरा शर्मा, जिन्दा मुहावरे (नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 1993), पृ॰ 131

[25] नासिरा शर्मा, बहिश्ते ज़हरा (दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2003), आवरण पृष्ठ

लिया था। राजनैतिक वातावरण दिन–ब–दिन बिगड़ रहा था, स्वतंत्रता केवल कहने मात्र ही रह गई थी। प्रधानमंत्री हुवैदा का कहना था "अभी ईरानी जनता किशोर अवस्था में है यह उम्र का नाजुक दौर होता है। सियासी विचारों के लिए यह कच्ची उम्र है जो दिमागी बढ़ोतरी के लिए हानिकारक है।"[26] वायस आफ अमेरिका, रेडियो, बी.बी.सी. ऐसी खबरें दे रहा था, जिससे लगता था ईरान की नाँव डूब रही है। अमेरिका के राष्ट्रपति कार्टर का रुख बदल रहा था। समाचार–पत्र हाथों हाथ बिकते जा रहे थे तथा उनका एक–एक शब्द पढ़ा जा रहा था।

हर तरफ जुलूसों का जोर था, कोई भी पीछे नहीं था चाहे वे औरतें ही क्यों न हों। क्रान्तिकारियों के नेता खुमैनी मौलवी थे। जुलूसों में हर व्यक्ति के हाथ में अपने प्रिय नेता की तस्वीरें थी। जहाँ एक तरफ क्रान्तिकारियों का जुलूस उमड़ता वहीं दूसरी ओर उन्हें नियंत्रित करने के लिए फौज, टैंक, शाही–सिपाहियों की फौज तैनात रहती थी। गोलियाँ चलतीं, लाशें बिछती परन्तु क्रान्तिकारियों के हौसले बुलंद थे। वह शाह को अपने देश से भगा देना चाहते थे।

सत्ता का विरोध करने वाले कर्मचारी अपने कामों पर नहीं आते थे। उनकी तनख्वाह भी बंद कर दी गई थी। ईरान में हँसी–खुशी की बजाये मार–काट का दृश्य हर तरफ दिखता था। जगह–जगह शाह के चित्र जलाये जा रहे थे। पुस्तकों की दुकानों पर छापें पड़ रहे थे। एक जागृति पूरे ईरान में छा रही थी। जो रोके नहीं रुक रही थी। मोटे–मोटे अक्षरों में समाचार पत्रों में आ रहा था– "सियासी कैदियों को आज़ाद करो।"[27] शहर की दीवारों पर लिखा नज़र आ रहा था, "कैदियों को आजाद करो।"[28]

शाही जेलों में लगभग दो हजार कैदी कैद थे। जो लोग वर्षों पहले विदेशों में बस गए थे वह भी लौटकर वापिस आना चाह रहे थे। खुमैनी पेरिस पहुँच गए थे। बढ़ रहे इंकलाब को बढ़ावा दे रहे थे। एक के बाद एक प्रधानमंत्री बदले जा रहे थे कोई भी टिक नहीं पा रहा था। वर्षों बाद लेखक बनाने का सपना बुद्धिजीवी देखने लगा था। खुमैनी को सबने अपना रहबर मान लिया था। उसके ईरान लौटने का सबको बेसब्री से इंतजार था, "जब तक शाह ईरान में है वह ईरान की धरती पर कदम नहीं रखेंगे।"[29] शाह विरोधी दल और साम्यवादी दल एक ही धरातल पर खड़े थे।

इस क्रान्ति के मुख्यतः दो ही उद्देश्य थे। पहला शाह को ईरान की धरती से खदेड़ना, दूसरा अमेरिका का प्रभाव कम करना। इस क्रान्ति के कारण वह दिन आ ही गया जब शाह को ईरान की धरती छोड़कर जाना ही पड़ा। शाह के जाने की खुशी से लोगों की आँखों में आँसू थे। शाह ने ईरान की मिट्टी उठाई किन्तु उसे ले जाने की इजाजत नहीं दी गई। जाते समय वह बोल उठा "मैं जा रहा हूँ। मेरे साथ मुस्कान, शांति और धन भी ईरान की धरती से जा रहा है।"[30] शाह के बाद ईरान दो भागों में बंट गया– शाहमित्र और शाहशत्रु। शाहमित्र इंकलाब का दुश्मन और शाहशत्रु इंकलाब के समर्थक थे। पूरे ईरान में खुमैनी की तस्वीरें चिपकी नज़र आने लगी थी।

विश्व के समूचे समाचार पत्र ईरानी की क्रान्ति को महत्व दे रहे थे। टी.वी. और रेडियो उसकी खबरे सुना दिखा रहे थे, जिसे देख विदेश में बसे ईरानी वापिस आने के लिये व्याकुल हो रहे थे। दूसरी ओर शाह के समय में बड़े पद पर आसीन लोगों का जीवन संकटमयी हो गया था। जानमाल का खतरा बढ़ गया था। उन्हें ईरान से बाहर जाना था। वे तेजी से अपना धन विदेशी बैंकों में भेज रहे थे। शाह सत्ता के बदलने को हर व्यक्ति अपने ढंग से देख रहा था। कुछ का कहना था, "शाह ने दो बड़ी गलतियाँ की। एक तो उसने लिखने–पढ़ने वालों को स्वतंत्रता नहीं दी, दूसरा पैट्रोल से आई सुख–सुविधाओं को लोगों तक नहीं पहुँचाया।"[31] कुछ अन्य लोगों का कहना था, "शाह एक इलाके में इतना शक्तिशाली बन गया था कि उसको उखाड़ना अमेरिका के लिए बहुत जरूरी था। विश्व में अमेरिकी वायु सेना के बाद ईरान का स्थान था। उसके

[26] नासिरा शर्मा, सात नदियाँ : एक समन्दर (नई दिल्ली : अभिव्यंजना प्रकाशन, 1984), पृ॰ 48
[27] नासिरा शर्मा, सात नदियाँ : एक समन्दर (नई दिल्ली : अभिव्यंजना प्रकाशन, 1984), पृ॰ 48
[28] वही, पृ॰ 110
[29] वही, पृ॰ 51
[30] वही, पृ॰ 58
[31] नासिरा शर्मा, सात नदियाँ : एक समंदर (नई दिल्ली : अभिव्यंजना प्रकाशन, 1984), पृ॰ 62

पास हथियारों से भरे भंडार और तेल से भरे कुएँ थे, जिससे अरब देश आतंकित रहते थे, मगर शाह के दबदबे के आगे आवाज बुलंद नहीं कर सकते थे।"[32]

ईरान में खुमैनी के स्वागत की तैयारियाँ शुरू हो गई थी। पूरा देश झिलमिला रहा था। खुमैनी ने ईरान की धरती पर पैर रखते ही सबसे पहले बहिश्त–ए–जहर कब्रिस्तान की ओर रुख किया ताकि वह शहीदों का नमाज–ए–जनाजा पहले पढ़े। यह जानकर ईरानी जनता भावुक हो उठी। खुमैनी के आगमन से दुकानें और फुटपाथ किताबों से भर गए। लेखन पर से रोक हट गई। साधारण लोग भी संसद में बैठे नज़र आते थे और दूसरी तरफ शहरों में फैलती बेरोज़गारी से तंग आकर लोग अपने गाँव, कस्बों में लौटने लगे थे।

खुमैनी के नाम का खुमार अब लोगों पर से उतरने लगा था। खुमैनी को ईरान में आये और शाह को देश छोड़े काफी समय बीत चुका था। जनता क्रांति का फल खाना चाहती थी। खोखली वादों से जनता ऊब चुकी थी। लोग वादों की अपेक्षा रोटी चाहते थे। सीमा पर तनाव बढ़ने लगा था। जनता में बेचैनी की लहर थी। अपराध घोषित होने से पूर्व ही फाँसी की सजा दी जाती थी। लोग घिसी–पिटी खबरें पढ़कर ऊबने लगे थे। खुमैनी ने भी हर किसी से मिलना बंद कर दिया था क्योंकि उसके पास लोगों के प्रश्नों के उत्तर न थे। संसद सदस्य बदले जाने लगे थे। नई योजनाएँ बनाई जा रही थी। शक के दायरे में आने वाले लोगों के घर किसी भी समय छापा पड़ जाता था और इस तरह से तलाशी ली जाती थी जैसे सुई ढूँढी जा रही हो। देश में गृहयुद्ध की स्थिति थी। मुज़ाहिरों को यंत्रणाओं से गुजरना पड़ता था। हालात दिन–ब–दिन बिगड़ते जा रहे थे। लोग ईरान छोड़कर विदेश की ओर भागने लगे थे।

वास्तव में जिन परिस्थितियों को बदलने, सुधारने के लिए क्रांति लाई गई थी, खून बहाया गया था वे क्रान्ति के पश्चात् पहले से भी खराब हो गई थी। नदियों को अंत में समंदर में मिल जाना है किन्तु पानी का भाग्य केवल बहते रहना है। अतः यह उपन्यास किसी छोटे दायरे पर निर्भर नहीं करता, बल्कि यह ऊँचे स्थान पर खड़े होकर किसी बड़े इलाके को सूक्ष्मता से देखना और दूसरी ओर उसी का हिस्सा बन, उसी माहौल में इंसानों के बीच उन्हें समझने वाली अनुभूति है। यह उपन्यास एक कौम और राष्ट्र के अहसास और संवेदना की ऐसी धरोहर है जिसे इतिहास खूनी अक्षरों मे सुरक्षित रखेगा।

5. कुइयाँजान

नासिरा शर्मा का यह उपन्यास सन् 2005 में सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह ने इसे 2005 साल का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास कहा है। इस उपन्यास में आज के समय में चल रही पानी की समस्या को उजागर किया है।

इस उपन्यास की पृष्ठभूमि इलाहाबाद शहर है। इलाहाबाद की मस्जिद वाली गली में बिजली चली जाने के कारण लोगों को पानी उपलब्ध नहीं होता जिस कारण वहाँ हाहाकार मच जाता है। लेखिका लिखती है, "मृत्यु दर दिन प्रतिदिन बढ़ती चली जा रही है। भारत में गांव, कस्बों, शहरों में लोग कुंओं, तालाबों और नदियों से पानी लेते हैं, जो अधिकतर गंदा और कीटाणुयुक्त होता है। उसमें प्राकृतिक रूप से पास जाने वाले संखिया की मिलावट होती है। सारें विश्व में 261 प्रमुख नदियां एक से अधिक देशों से होकर गुजरती हैं। दुनिया के कुल नदी प्रवाह का 80 प्रतिशत इन्हीं में है और जिन देशों से होकर यह गुजरती हैं, उनमे संसार की 40 प्रतिशत जनसंख्या रहती है। पानी की कमी के कारण देश में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तनाव पनपते हैं– जैसे– भारत और पाकिस्तान, भारत और बांग्लादेश, भारत और नेपाल, सीरिया और तुर्की के बीच, स्वयं भारत में कर्नाटक और तमिलनाडु के बीच कावेरी नदी को लेकर तनाव की स्थिति पनप रही है।"[33] इससे जल समस्या की वैश्विक विकरालता से साक्षात्कार होता है। इसके लिए महज राजनीतिक चेतना जिम्मेदार नहीं है, बल्कि आज हमारे हाथों होती तो उनकी दुर्दशा किसी पर्दे में नहीं रह गई है। इन्सान की धनलोलुपता की भेट चढ़ती प्राकृतिक वन संपदा, वहां खड़ी होती ऊँची इमारतें, चौड़ी सड़के, उन पर छुँआ छोड़ते असंख्य वाहन, कारखानों से निकलता जहरीला रासायनिक पानी आसानी से अपनी आस्था और संस्कृ

[32] वही, पृ॰ 63

[33] नासिरा शर्मा, कुइयाँजान (नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन, 2005), पृ॰ 77

तिक की केन्द्र बिन्दु नदियों के आंचल में छोड़ने से हम कहां बचे हैं। अतः नासिरा शर्मा केवल सवाल ही नहीं उठाती बल्कि प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास भी करती है, जैसे, जाओ देखों उन घने जंगलों को, जो तुमने काट दिए। जाओ ढूँढों उन जीवों को जो तुम्हारी गोली से पैदा होने से पहले मरते जा रहे हैं। जाओ देखो उस जमीन को, जिसके स्तनों को तुमने निचोड़ लिया और अपनी सत्ता के लिए उस पर परमाणु बमों का प्रयोग किया। जाओ देखो उसकी तपती परतों को और उसकी साजिश का अंदाजा लगाओ कि वह किस तकलीफ से दो–चार है। उन पर्वतों को देखो, जिन्हें तोड़कर, उड़ाकर तुमने अपनी इच्छाएँ पूरी की। उन हिम शिखरों को देखों जिन्होंने अपने वजूद को पिघलाकर तुम्हें नदियाँ दी और तुमने उन्हें बर्बाद कर दिया। यहीं नदियां थीं जिनके किनारे तुम आकर बसे थे, आज तुम उनसे मुँह मोड़ चुके हो। तुम स्वार्थी हो।"[34]

डॉ॰ कमाल इस उपन्यास का प्रमख़ पात्र है, जो जनता की सेवा करने के लिए समर्पित है। जल संपत्ति पर डॉ॰ कमाल का गहन अध्ययन है। दूषित पानी के कारण होने वाले रोगों के प्रति वे जनता को सचेत करते हैं। कई सेमिनारों में जल समस्या से संबंधित अपने आलेख प्रस्तुत करते हैं। इन्हीं आलेखों से यह जानकारी मिलती है "यह विदेशी कंपनियों का दुष्चक्र ही है कि हमारी मानसिकता से खेलकर बच्चों व नई पीढ़ी को ढक्कन बंद पानी ही नहीं अपितु कोका कोला, पेप्सी का आदी बनाया जाना। हमारे ही पानी से महज एक से डेढ़ रुपये की लागत से तैयार होकर हमें आसानी से 10रु में बेचा जा रहा है, क्योंकि अमेरिकी पत्रकार, फार्चुन के अनुसार पानी उद्योग में मिलने वाला मुनाफा तेल क्षेत्र के मुनाफे की तुलना में 40 प्रतिशत हो गया है।"[35] डॉ॰ कमाल के इस कार्य में उनकी पत्नी भी उनका साथ देती है।

अतः यह उपन्यास पानी का हमारे जीवन में महत्व, उसकी कमी एवं उसके प्रदूषित होने के कारण होने वाली हानियों से हमें सचेत करता है। पानी का विषम रूप सहज ही पाठक के अपने जीवन से जुड़ी महसूस होने लगती है।

6. ज़ीरो रोड़

यह उपन्यास सन् 2008 में भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इसका कथानक इलाहाबाद शहर के इर्द–गिर्द रचा गया है, यह हिन्दी का पहला ऐसा उपन्यास है, जो दुबई की जिन्दगी को इतनी निकटता और विस्तार से अंकित करता है।

ज़ीरो रोड़ उपन्यास का कथानक इलाहाबाद में ज़ीरो रोड़ के दो पड़ोसी रामप्रसाद और जगतराम जैसे दो मित्रों एवं परिवारों पर रचा गया है। रामप्रसाद के परिवार में उनकी पत्नी राधा रानी, लड़की पूनम और सिद्धार्थ तथा विवेक नामक दो बेटे हैं, जो उम्र में पूनम से बड़े हैं। जगतराम के परिवार में उनकी पत्नी यशोधरा, दो बेटियाँ कविता और सुमित्रा तथा आठ–नौ साल का छोटा बेटा है– चुन्नू। सिद्धार्थ दुबई में काम करता है। वह कविता को पसंद करता है। दोनों के माँ–बाप भी इससे परिचित हैं। इस परिवार के सभी सदस्यों में आत्मीय संबंध हैं। घर में कोई भी आयोजन, बड़ा पर्व या कुछ भी होने पर भी नया कुछ बनने पर सबसे पहले कविता या स्वयं यशोधरा उसे रामप्रसाद के घर लेकर दौड़ती है।

सारी आत्मीयता के बावजूद रामप्रसाद गुस्सैल और कंजूस आदमी है। उनसे तंग आकर ही बड़ा बेटा सिद्धार्थ दुबई जाने को मजबूर हुआ है। बेटे द्वारा भेजे गए पैसों के कारण वे अपने आप को अमीर समझने लगते हैं। अतः ज़ीरो रोड़ वाला यह पुराना मकान अब उन्हें रहने लायक नहीं लगता। वह किसी कालोनी में नया मकान देखने जाते हैं। उनके इस बर्ताव से दोनों परिवार बिखर जाते हैं क्योंकि अब वे आमतौर पर गरीब पड़ोसी की लड़की कविता से सिद्धार्थ के विवाह के विरुद्ध है। अतः दोनों परिवार रामप्रसाद के अड़ियल रवैये के कारण दूर हो जाते हैं। एक दिन राधा रानी की तबीयत खराब हो जाने पर भी बाबू जगतराम के यहाँ से दवाई नहीं मगवाई गई। वैद्य का पता पूछने के लिए उनके यहाँ जाने से भी रामप्रसाद पूनम और विवेक को रोकते हैं। वह सख्त स्वर में कहते हैं, "वैद्यों से इलाहाबाद शहर भरा पड़ा है। उनके बताए हुए वैद्य से अकेले इस शहरवासियों का काम नहीं चलता है। जब तक मैं न कहूँ खबरदार कोई उनके घर गया।"[36]

---

[34] वही, पृ॰ 27

[35] नासिरा शर्मा, कुइयाँजान (नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन, 2005), पृ॰ 89

[36] नासिरा शर्मा, ज़ीरो रोड़ (नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, 2008), पृ॰ 157

सिद्धार्थ अकेले ही दुबई में रहता है। वहां की तन्हा जिन्दगी में उसे ज़ीरो रोड़ पर छूटा अपना परिवार और पड़ोस रह–रह कर याद आता है। अपने इसी जवान बेरोज़गार बेटे की नौकरी के लिए किसी दलाल की सलाह पर रामप्रसाद ने एक लाख रुपये की व्यवस्था की थी। किन्तु दुबई का सच उसे वहाँ पहुँच जाने के बाद पता चलता है। दस बारह मजदूरों के साथ एक कंटेनर में वह कई महीने रहा। उसका पासपोर्ट भी कंपनी वालों ने जमा कर लिया। लेकिन संयोग से ठेकेदार ने किसी आदमी से अंग्रेजी में कुछ बात करते हुए सुना और मजदूर से सिद्धार्थ को मैनेजर बना दिया। सिद्धार्थ दुबई के संदर्भ में कहता है, "यह हसीन शहर वास्तव में ताजिरों और मजदूरों का है। उनके लिए जन्नत और हमारे लिए दोजख।"[37] यहाँ कुल मिलाकर 97 देशों के लोग रहते हैं। उसमें सात राज्य हैं और कुल जमा चौदह लाख की आबादी वाला एक बेहद छोटा–सा देश है। दुनिया के अनेक देशों के लोग वहां एक–दूसरे के निकट आकर अपना एक अलग और स्वयत्त समाज बनाने की कोशिश करते हैं। सिद्धार्थ ने यहां आकर गल्ला मंडी में अनाज की बोरियां ढोने से अपनी जिन्दगी शुरू की थी। अब चाहते हुए भी कम से कम पांच साल तक वह यह जमीन नहीं छोड़ सकता, क्योंकि कंपनी के अनुबंध पर उसके हस्ताक्षर हैं और उसका पासपोर्ट कंपनी के पास गिरवी है। साथ ही परिवार के बहुत से सपने उससे जुड़े हैं।

दुबई से इलाहाबाद आने पर सिद्धार्थ लाला चुन्नीराम के यहां जाता है। वे दुबई में हिन्दुत्व के काम का जिम्मा उसे सौंपना चाहते हैं। यह जानकारी उन्हें है कि वहां धनवान भारतीयों की कमी नहीं है। सिद्धार्थ बहाना बनाकर वहाँ से खिसक जाता है। घर पहुँचकर भी वह सामान्य नहीं हो पाता। दुबई में घटित वह प्रसंग उसे याद आता है, जब किसी ने दीया जलाकर क्रीक के पानी पर बहाया था। उस पर जुर्माना हुआ और उसे बताया गया कि इस तरह की व्यक्तिगत आस्थाओं एवं रीति–रिवाजों को आप सार्वजनिक जगह पर व्यक्त नहीं कर सकते। यहां दूसरे धर्मों एवं विचारों के लोग भी रहते हैं। उनकी भावनाओं का भी सम्मान होना चाहिए।

दरअसल दुबई से इलाहाबाद तक फैली दो दुनियाओं को जोड़नेवाला सूत्र सिद्धार्थ है। जब वह दुबई में होता है तब भी इलाहाबाद हमेशा उसके साथ होता है। अतः सिद्धार्थ उसी ज़ीरो रोड़ वाले मकान में वापस लौटता है। एक आत्मीय और परिचित शहर से अधिक उसके लिए यह जड़ों की ओर वापसी का मामला है।

अतः नासिरा शर्मा का यह उपन्यास एक बड़े भूगोल की रचना है, जो दुबई से इलाहाबाद तक फैला है। दुबई में बाहर से आए और प्रवासी लोगों का एक समूह ही सिद्धार्थ के बहाने यहां अंकित है। उनकी अपनी पीड़ा, हताशा और जख्म इस उपन्यास में साफ देखे जा सकते हैं।

7. अक्षयवट

यह उपन्यास सन् 2003 में भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इसकी कथा इलाहाबाद शहर की पृष्ठभूमि से संबंधित है। इसमें समग्र इलाहाबाद अपनी सांस्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक विरासत के साथ उपस्थित है। यह एक ऐसे खानदान की कहानी है, जिसके पुरुषों ने लगातार चार पीढ़ियों तक अल्पायु में ही अपना जीवन मानवीय आदर्शों के लिए समर्पित कर दिया है।

इलाहाबाद के अकबरपुर मुहल्ले में रहने वाले ज़हीर की कहानी इस उपन्यास की मूलकथा है। ज़हीर के परदादा सगीर अहमद पास के ही किसी गांव में रहकर डॉक्टरी करते थे। अंधविश्वासों के खिलाफ लड़ने के कारण उन्हें जान से हाथ धोना पड़ा था। तब उनकी बेवा फिरदौस बेगम इलाहाबाद आकर रहने लगे। सगीर अहमद के बेटे मजीद अहमद वतन की मुहब्बत में सूली पर चढ़ा दिए गए। उनकी बीबी मेहसन्निसा ने भी बड़ी हिम्मत से इस हादसे को सह लिया और बेटे शमीम अहमद को अलीगढ़ में शिक्षा दिलाई। उसकी मेहनत से वह तहसीलदार बन गया। बाद में शमीम का विवाह फिरोजजहाँ से हुआ, किन्तु मर्दों की मौत का सिलसिला इस खानदान में चलता ही रहा। कुछ ही दिनों बाद शमी अहमद और उसके बेटे नसीम की भी मौत हो गई। अब इसी वंश का चिराग नसीम का बेटा ज़हीर है। ज़हीर की दादी फिरोज़जहाँ अपनी जवान विधवा बहू सिपतुन और पोते ज़हीर के साथ अकबरपुर मुहल्ले में रहती है। फिरोज़जहाँ बहुत पढ़े–लिखे घर की थी, लेकिन सुख उसके नसीब में नहीं था। न शौहर का सुख ज्यादा दिन का था और न इकलौते बेटे

[37] वही, पृ॰ 325

नसीम का। इसी ख्याल से फिरोजजहाँ ज़हीर की लंबी उम्र की दुआ मांगती वही जवान विधवा बहू सिपतुन को देख वह खुले मन से बहू को दूसरी शादी करने की नेक सलाह भी देती है। लेकिन सिपतुन इसके लिए राजी नहीं होती। फिरोजजहाँ बैरिस्टर पिता की पढ़ी–लिखी औलाद थी। अतः घर खर्च चलाने के लिए एक ओर जहाँ सिपतुन कपड़े सिलती थी वही दूसरी ओर फिरोज़जहाँ मिस मेरी स्कूल में अंग्रेजी और इतिहास पढ़ाने लगी थी।

इसी बीच इलाहाबाद शहर के गहरे युवा मित्र ज़हीर, रमेश, शमशेर, सलमान, जगन्नाथ, मुरली व वसंत आदि सभी वर्तमान व्यवस्था पर तीव्र आक्रोश व्यक्त करते हैं। अन्यायी, अत्याचार और भ्रष्टाचारी इन्स्पेक्टर उन्हें किसी झूठे केस में फंसाना चाहता है, परन्तु वे कभी किसी षड्यंत्र में नहीं फँसते। युवा शक्ति का उपयोग समाज निर्माण के कार्य में करने वाले एस.एस.पी. सतीश मजूमदार जैसे ईमानदार अफसर भी इस शहर में हैं। उपन्यास का खलनायक पुलिस इन्सपेक्टर त्रिपाठी मूलतः निम्न जाति का मल्लाह है, परन्तु उच्चवर्गीय हो जाने की ललक में वह अपने नाम के आगे त्रिपाठी जोड़ लेता है।

बेरोज़गारी इन युवाओं की सबसे बड़ी समस्या है। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त भी इन्हें नौकरी नहीं मिलती। रमेश की माँ को भी यही चिंता सताती है कि उसे नौकरी कब मिलेगी ? और कब उसके दो बेटियों की शादी होगी। वह कहती है, "अच्छा लड़का ढूँढना आसान था, मगर उसके खुले मुँह को लाखों रुपयों से भरना कठिन काम है।"[38]

बेरोज़गारी इन युवाओं की नैतिक शक्ति को कमजोर बनाती है। अतः दादी फिरोजजहाँ ज़हीर को दुनिया की सारी शराफत और नैतिकता का पाठ पढ़ाती थी, लेकिन इस झूठी और मक्कार, दुनिया में उस नैतिकता और अच्छाई की कोई गुंजाइश नहीं थी। कॉलेज से ज़हीर को नकल के झूठे इल्जाम में फंसाकर दो साल के लिए रेस्टिकेट कर दिया जाता है। जो गुनाह उसने किया ही नहीं उसकी सजा उसे जबरदस्ती भुगतनी पड़ती है। फिरोजजहाँ अपने सारे ख्वाबों के टूटने से दम तोड़ देती है। ज़हीर की पढ़ाई छूट जाती है। वह विसातखाने के दुकान खोलता है। दो साल बीतने के बाद वह अपनी दादी के सपने को पूरा करने के लिए फिर से पढ़ाई शुरू करता है। अंततः उसे ईविंग क्रिश्चियन कॉलेज में नौकरी मिल जाती है। वह अनाथ बच्चों के लिए मुस्कान नाम से एक संस्था शुरू करता हैं। सिपतुन ज़हीर को देख अपनी सास फिरोजजहाँ को याद करती है कि काश! अम्मीजान आज का दिन देखने के लिए चन्द साल और जिंदा रहती, ताकि देख पाती कि उनका लगाया पौधा एक ताकतवर दरख्त बन चुका है।

अतः नासिरा शर्मा ने इस उपन्यास के माध्यम से इलाहाबाद की संस्कृति और उसके बनते–बिगड़ते जीवन को बड़ी बारीकी से व्यक्त किया है। यह उपन्यास इलाहाबाद के युवा जिन्दगियों की मर्मस्पर्शी कहानी है, जो विरासत में मिली तमाम उपलब्धियों के बावजूद अवसाद भरी जिन्दगी जीने के लिए मजबूर है। इसमें सांस्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विषमताओं को व्यक्त करते हुये मनुष्य जीवन अधिकाधिक उन्नत एवं विकसित करने हेतु प्रेरणा दी गई है।

8. पारिजात

नासिरा शर्मा स्त्री रचनाकारों में अपनी विशिष्ट पहचान रखती है। इनका उपन्यास 'पारिजात' को जीवन का जिंदगीनामा कहा जाता है। 2016 ई. में 'साहित्य आकादमी पुरस्कार' से इस उपन्यास को सम्मानित किया गया।

नासिरा शर्मा स्त्री रचनाकार होते हुये भी स्वयं को स्त्रीवादी नहीं मानती हैं। वे स्पष्ट रूप से कहती हैं– ''मैं स्त्रीवादी नहीं हूँ और न सिर्फ स्त्रियां ही मेरे लेखन के केन्द्र में रहीं हैं। ऐसा इसलिए है, क्योंकि मुझे नहीं लगता कि स्त्री की समस्याएँ उनका रूप कुछ भी हो– सिर्फ स्त्री की समस्याएँ हैं। वे सीधे–सीधे हमारी सामाजिक व्यवस्था से जुड़ी हुई है और उन्हें सीमित दायरे में देखने की जगह व्यापक सन्दर्भों में देखा जाना चाहिए।''[39]

[38] नासिरा शर्मा, अक्षयवट (नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2008), पृ॰ 23

[39] नासिरा शर्मा, औरत के लिए औरत, (दिल्ली : सामयिक प्रकाशन, प्रथम संस्करण), पृ॰ 191.

इस उपन्यास का केन्द्र पुरुष रोहन है। इसका उत्पीड़न का कारण उसकी अंग्रेज पत्नी ऐलेसन है। जिसके कारण रोहन को अपने प्रिय पुत्र 'पारिजात' को खोना पड़ता है। अपनी नौकरी व घर से हाथ धोना पड़ता है। इसी सदमें से उसकी माँ की मृत्यु हो जाती है और पिता की सारी सम्पत्ति मुकदमों की भेट चढ़ जाती हे। इस उपन्यास में पुरुष के प्रति लेखिका ने महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया गया है कि पुरुष का संताप और बच्चों के प्रति उसके प्रेम भाव का लेखन साहित्य में क्यों नहीं हैं?

एक पुरुष में भी बच्चों से दूर होने का दर्द और छटपटाहट एक माँ के हृदय से कम नहीं होती। इस तरफ संकेत करती लेखिका रोहन के दर्द को शब्दों में बयान करती कहती है– ''औरतों के दुखड़ों के बरक्स मर्दाना दुःख का भी एक वृत्तांत है, जो इल्ज़ामों व बदनामियों की झीनी–झीनी चदरिया से छुपा हुआ है। काश! यह दर्द भी कोई ऊँची आवाज़ से बिरह की तरह गाता, महाकाव्य की तरह रचता... मगर बाप के दिल की तो कोई बात नहीं करता। उनके संताप, प्रेम को कभी कोई शब्द ही, नहीं दिया गया, ममता की तरह। यह कैसा अन्याय?''[40] स्त्रियाँ ही नहीं, बल्कि पुरुष भी घर से बेघर हो जाते हैं और घर की तलाश में भटकते रहते हैं। रोहन भी उन्हीं व्यक्तियों में से एक है। लेखिका उसकी पीड़ा को शब्द प्रदान करती हुई कहती है– ''बरसों से मैं जैसे एक घर से दूसरे घर में भटक रहा हूँ, मगर अपना घर और ठिकाना कोई नहीं है।''[41] रोहन सारी जिन्दगी अपने पुत्र पारिजात के लिए व्याकुल रहता है और जागते–सोते उसे ही पुकारता रहता है।

रूही की मित्र मारिया मेनन आर्ट ऑफ लिविंग का कोर्स चलाती है और दुखी लोगों की कांउसिलिंग करती है। वर्षों भर के अनुभवों के पश्चात् वह परिणाम निकालती है कि स्त्रियाँ भी पुरुषों से कम ज़ालिम नहीं होती। वह कहती है– ''औरतें बाहर से जितनी सुंदर और सुकुमार लगती हैं, उतनी ही अन्दर से षड्यंत्री और जालिम होती है... तुम्हें यकीन नहीं आएगा कि पिछले पन्द्रह वर्षों में मैंने लगभग दो सौ मर्दों को औरतों के हाथों तबाह होते देखा है।''[42] ऐलेसन भारत देश को पसन्द करती है और रोहन से बहुत प्रेम करती है किन्तु वह क्रूरता और अमानवीयता की सारी हदें क्यों पार कर जाती है? उपन्यास में यह बात पूरी तरह से स्पष्ट नहीं हो पाई है। वह अपनी नानी की सारी सम्पत्ति पाना चाहती है जिसकी शर्तों के तहत वह रोहन पर मार–पीट का झूठा आरोप लगा कर उसे जेल में डाल देती है और स्वयं बेटे को लेकर वहाँ से चली जाती है। रोहन और ऐलेसर दोनों नौकरी कर खूब डॉलर कमाते हैं और उसके घर में उच्चवर्गीय जैसी सारी सुविधाएँ मौजूद होती हैं फिर भी वह नानी की सम्पत्ति का लालच दिखाती है क्योंकि वह एक लेस्बियन है। इस भेद का रोहन के सामने खुलने से वह स्वयं आरोप मुक्त होने के लिए रोहन को कठघरे में खड़ा कर देती है।

'पारिजात' उपन्यास में विधवा स्त्रियों की पीड़ा को भी लेखिका ने उल्लेखा है। उपन्यास में नायिका रुही, फिरदौस जहाँ बेगम, मारिया मेनन, सरस्वती, सुमित्रा और अन्ना बुआ सभी वैधव्य के दुख से पीड़ित हैं। रुही तीस वर्ष की अवस्था में ही विधवा हो गयी थी और सफेद कोठी के साथ ही ससुराल की अकेली वारिस बन गई। दुबारा विवाह करने की बात सोचना उसे बेईमानी लगता। लेकिन नासिरा शर्मा पुनर्विचार की पुरज़ोर वकालत मारिया के माध्यम से इस प्रकार करती है– ''यार रुही! हमको' एक जिंदगी मिली है। वह भी रो–रोकर गुज़ारी तो क्या गुज़ारी? मेरी सुन... मेरी तरफ देखा हम हिन्दुस्तानी लोग रिश्तों में अटके पड़े रह जाते हैं। नए रिश्ते बनाने से डरते हैं और ...।''[43] रुही की माँ को भी उसकी यही चिन्ता सताती रहती है कि वह पढ़ी–लिखी अधिकांश लड़कियों की भाँति अकेले रहने का फैसला न कर लें। वह सोचती हैं– ''आजकल नई हवा चली है लड़कियों और औरतों में कि वे मर्द के बिना जिंदगी गुजार सकती हैं। उनमें बड़ा ऐतमाद आ गया है, मगर जरूरत और तकाजे भी जिंदगी में होते हैं।''[44] रुही अपनी विवशता माँ के समुख रखती हुई कहती है– ''चाहती तो मैं भी हूँ मम्मा! मगर ज़माना न स्वयंवर का रह गया है, जो एक साथ सैंकड़ों जवानों

[40] नासिरा शर्मा, पारिजात, (दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 2011), पृ॰ 438.

[41] वही, पृ॰ 106.

[42] नासिरा शर्मा, पारिजात, (दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 2011), पृ॰ 304.

[43] वही, पृ॰ 295.

[44] वही, पृ॰ 211.

की दावत दे मैं एक के गले मैं जयमाल डाल दूं और न मैं इतनी सीधी और भोली हूँ कि आपसे कहूँ जो शरीफ घराने का खानदानी लड़का मिले उससे निकाह पढ़वा दीजिए।''[45] रोहन और रुही जो बचपन के मित्र हैं उन्हें कुछ समय बाद इस बात का अहसास होता है कि वे एक अच्छे जीवनसाथी बन सकते हैं।

'पारिजात' धर्म और संस्कृति से परे प्रेमपूर्ण सम्बन्धों और खूबसूरत रिश्तों की सुन्दर दास्ता भी है। दोस्ती का खूबसूरत रिश्ता तीन खानदानों में पनपता दिखाई देता है। प्रहलाद दत्त, बशारत हुसैन और जुल्फिकार अली। तीनों खानदान के चारों बच्चे रोहनदत्त, मोनिस, रुही और काज़िम प्रेमपूर्ण वातावरण में पलकर बड़े हुये। जहाँ सबके घर के दरवाज़े एक दूसरे के लिए खुले रहते थे। मुहर्रम या दशहरा कोई भी पर्व हो सभी मिलजुल कर प्रेम से मनाते हैं।

लेखिका ने 'पारिजात' उपन्यास में मुहर्रम को हिन्दू–मुस्लिम एकता का प्रतीक मान कर उसका सुन्दर चित्रण तो किया ही है साथ ही हुसैनी ब्राह्मण के माध्यम से अरब की धरती का सम्बन्ध बड़े कलात्मक ढंग से हिन्दुस्तान से जोड़ा है। रोहनदत्त हुसैनी ब्राह्मण है। ऐलेसन से धोखा खाने के बाद वह अपनी जड़ों की ओर लौटता है और अपने बेटे 'पारिजात' के लिए वह हुसैनी ब्राह्मणों के मूल पर पूरी रिसर्च करने का प्रयास करता है।

नासिरा शार्म हिन्दू–मुस्लिम एकता, सामाजिक संस्कृति और साझी विरासत को कामदार सुनहरे प्रेम में जड़ कर हर व्यक्ति के आकर्षण का केन्द्र बना देना चाहती है। सुनहरे फ्रेम में मढ़ा हुआ वाजिद अलीशाह का यह शेर प्रस्तुत करती है– ''नाकूस ब्राह्मण ने सद ही अज़ान की। मस्जिद से हमने सजदा किया सोमनाथ का।''[46] इस शेर को समझने के लिए खुला दिल व दिमाग चाहिए।

नासिरा शर्मा का यह उपन्यास उसी पथरीले रास्ते को सुगम बनाने की कोशिश करता दिखाई देता है। रैल्फ फॉक्स का यह कथन– ''दुनिया आज बुरी तरह विभाजित है। किन्तु एकता की ताकतें भी क्रियाशील हैं और यह एक ऐसी बात है जिसे नये युग के उपन्यासकार को हमेशा अपने दिमाग में सर्वप्रथम स्थान देना चाहिए।''[47] यह बात पारिजात उपन्यास पर सटीक बैठती है।

नासिरा शर्मा उसे अपने दिमाग में स्थान ही नहीं देती बल्कि एक महाआख्यान ही रच देती है। यह उपन्यास मानवधर्मिता और रचनाशीलता की दृष्टि से हिन्दी में अपनी अलग पहचान बनाने में सफल हुआ है।

इस प्रकार नासिरा शर्मा का हिन्दी–उपन्यास साहित्य में अनुपम स्थान है।

[45] नासिरा शर्मा, पारिजात, (दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 2011), पृ॰ 451.

[46] वही, पृ॰ 487.

[47] रैल्फ फॉक्स, उपन्यास और लोकजीवन, अनुवाद (दिल्लीः पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस, 1980), पृ. 143.